Dimensions of Jain Philosophy and Indian Culture

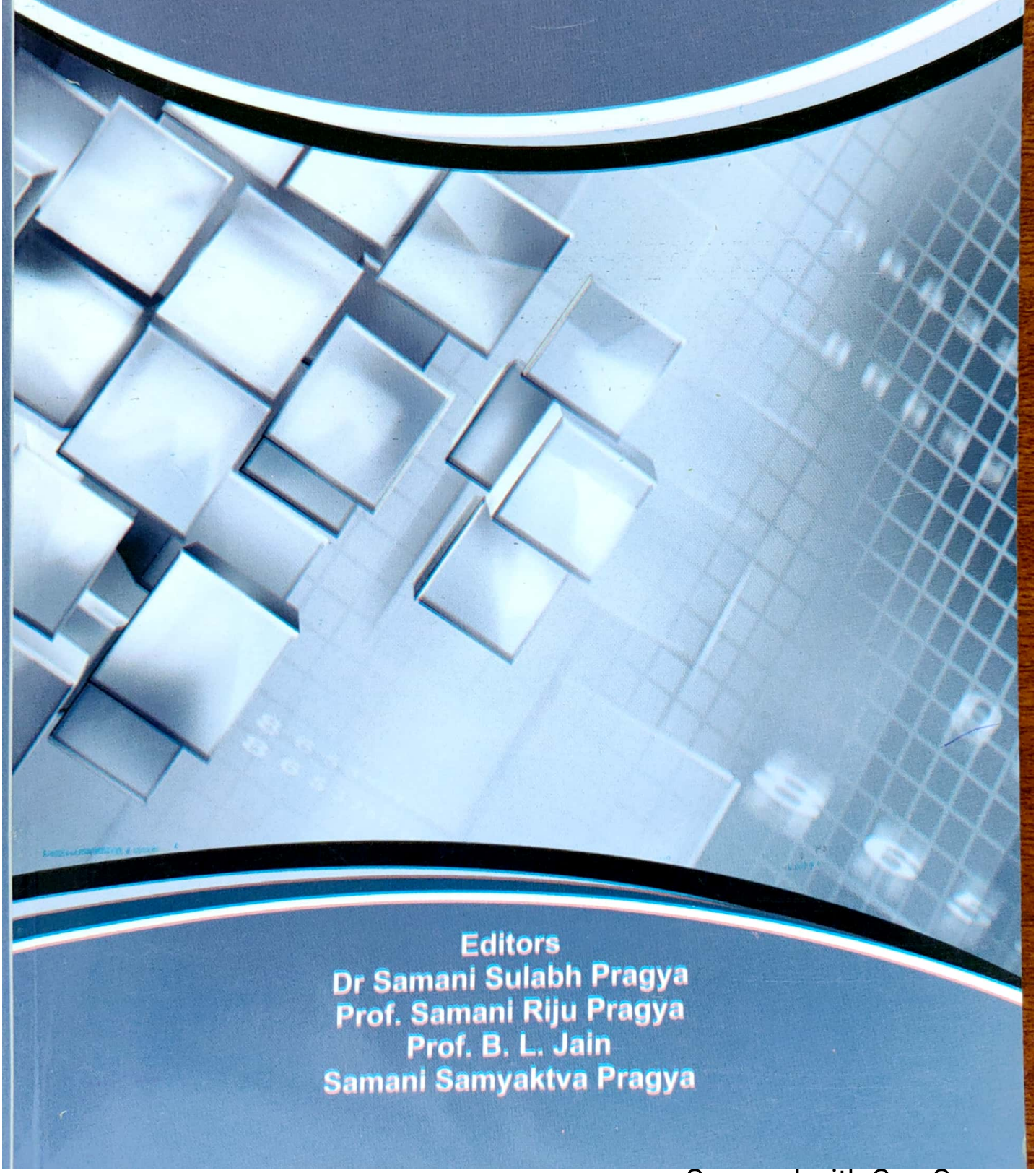

Editors
Dr Samani Sulabh Pragya
Prof. Samani Riju Pragya
Prof. B. L. Jain
Samani Samyaktva Pragya

Scanned with CamScanner

Dimensions of Jain Philosophy and Indian Culture

Editor : Dr Samani Sulabh Pragya
Prof. Samani Riju Pragya
Prof. B. L. Jain
Samani Samyaktva Pragya

© : Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

ISBN : 978-93-83634-38-5

Edition : 2018

Rs. : 350/-

Publisher : Bhagwaan Mahaveer International Research Center
Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)
Ladnun 341306 (Rajasthan) India
www.jvbi.ac.in

Printed by :

Scanned with CamScanner

Contents

Section-1 (A) : Jain Philosophy

1. प्राचीन जैन साहित्य में शरीर और चिकित्सा विज्ञान 3-16
   प्रो. दामोदर शास्त्री
2. आगम व्याख्या-साहित्य में प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त 17-27
   प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा
3. आचार्य महाप्रज्ञ-साहित्य में अध्यात्म-विकास की भूमिकाएं 29-42
   प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा एवं डॉ. समणी श्रेयसप्रज्ञा
4. जैनदर्शन में समुद्घात की अवधारणा 43-57
   समणी सम्यक्त्वप्रज्ञा
5. **Number Theory: A Mathematical Solution of Metaphysical Problems in Jaina *Āgama*** 59-72
   Dr Samani Vinay Pragya
6. **Communication and our Relations** 73-84
   Dr Samani Aagam Pragya
7. जैन परंपरा में मान्य सूर्य एवं चन्द्रमाँ का स्वरूप 85-95
   डॉ. योगेश कुमार जैन
8. पर्यावरण संरक्षण और जैन धर्म 97-103
   डॉ. रवीन्द्र सिंह राठौड़
9. पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और जैन दर्शन 105-119
   डॉ. समणी हिमप्रज्ञा
10. सामायिक आवश्यक : एक अनुशीलन 121-141
    डॉ. मुमुक्षु वन्दना मेहता

Section-1 (B) : Experimental Researches on Preksha Meditation

11. **Role of Preksha Meditation in Improvement of Blood Count and Biochemistry of Adults** 145-154
    Dr Pradyumna Singh Shekhawat

Scanned with CamScanner

12. **Effect of Preksha Meditation on Cognitive Distortion** 155-174
Dr Samani Sulabh Pragya

13. प्रेक्षाध्यान का महाविद्यालयी छात्राओं की सृजनात्मक क्षमताओं पर प्रभाव का अध्ययन 175-183
डॉ. अशोक भास्कर

Section-2 (A) : Indian Culture

14. बीकानेर संभाग में प्राप्त संस्कृत अभिलेखों का सांस्कृतिक तत्व 187-194
डॉ. समणी संगीत प्रज्ञा

15. अहिंसक जीवनशैली: सामाजिक समरसता का आधार गांधीयन परिप्रेक्ष्य 195-207
डॉ. जुगलकिशोर दाधीच

16. वैदिक संस्कृति में तप की महत्ता एवं उपादेयता 209-221
डॉ. सुनिता इंदोरिया

17. कालिदास के साहित्य में सामाजिक समरसता 223-229
डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज

18. आचार्य महाप्रज्ञ का शिक्षा दर्शन 231-244
डॉ. हेमलता जोशी

Section-2 (B) Miscellaneous

19. **Choice Based Credit System: A new paradigm Shift in Indian University Platform** 247-260
Dr Bhabagrahi Pradhan

20. **Various Types of Cooperation in Rural Communities of Ladnun, Rajasthan: A study** 261-278
Dr Bijendr Pradhan

21. **Diasporic Conditions and the Aporia of Female Sensibility in Jhumpa Lahiri's The Namesake.** 279-285
Dr Govind Sarswat

Scanned with CamScanner

जैन परंपरा में मान्य सूर्य एवं चन्द्रमाँ का स्वरूप

*****

*डॉ. योगेश कुमार जैन

सारांशिका

जैन परंपरा में लोक के तीन विभाग किये गये हैं। जहां मनुष्य एवं पशु–पक्षी रहते हैं वह मध्यलोक है तथा मध्यलोक के नीचे के भाग को अधोलोक अथवा नरकलोक कहते हैं और ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक अथवा स्वर्गलोक कहते हैं। स्वर्गलोक के नीचे एवं मध्यलोक के ऊपर सुमेरूपर्वत की परिक्रमा करते हुए ज्योतिर्लोक के विमान हैं। जैन दर्शन के अनुसार ये सभी ग्रह, नक्षत्र, तारे, चन्द्रमाँ एवं सूर्य सुमेरूपर्वत की परिक्रमा करते रहते हैं। इस आलेख में सूर्य एवं चन्द्रमाँ के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है। साथ ही इस आलेख में जैन दर्शन के अनुसार शुक्ल/कृष्ण पथ और ग्रहण इत्यादि चंद्र व राहु के विमान–गमन से कैसे बनते है इसका स्पष्टीकरण किया गया है। विविध ऋतुएं, दिन–रात के परिमाण में अन्तर का विश्लेषण भी जैन–मतानुसार चर्चित किया गया है। जैन परम्परा में मान्य चन्द्र व सूर्य की संख्या की विवेचना प्रस्तुति की गयी है। इस प्रकार कुछ ज्योतिष संबंधित विषय पर जैन दर्शनानुसार प्रकाश डाला गया है।

सम्बद्ध शब्द : *सूर्य, चन्द्र, राहु, जैन दर्शन।*

***सहायक आचार्य,** जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं 341306 (राजस्थान)

लोक का सामान्य स्वरूप

सृष्टि के सम्बन्ध में जैनों का दृष्टिकोण पूर्णतः निर्णीत है। उसके अनुसार यह लोक, विश्व या सृष्टि जीव तथा पुद्गल आदि छह द्रव्यों से निर्मित है। ये छह द्रव्य न तो कभी किसी से उत्पन्न हुए हैं और न कभी किसी अन्य द्रव्य में विलीन ही होंगे। अनादि अनन्त द्रव्यों से निर्मित यह लोक भी आदि अन्त रहित, अकर्तृक तथा स्वयंचालित है। इसका सृष्टा, पालक तथा संहारक भी कोई नहीं है।[1] जीव और पुद्गल जिस क्षेत्र सीमा में परिभ्रमण करते हैं, उसे लोक कहते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि–

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए।
अजीव देसमागासे, अलोए से वियाहिए।।[2]

अर्थात् जीव और पुद्गल जहां रहते हैं, उसे लोक कहते हैं। अजीव के एक देशभाग आकाशास्तिकाय मात्र जहां है, उसे अलोक कहते हैं अथवा आकाश के जिस भाग में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्य रहते हैं, वह लोक कहलाता है। लोक के बाहर सभी दिशाओं–विदिशाओं में अलोक का विस्तार है। अलोक अनन्त आकाश प्रदेशी है, इसको किसी प्रकार से सीमा में नहीं बांधा जा सकता अतः इसका कोई निश्चित आकार भी नहीं है।

जैन दार्शनिक सद्वादी हैं। किन्तु उनका सत् पुराणों के समान कोई तत्त्व अथवा द्रव्य नहीं है। अपितु वह द्रव्य का लक्षण मात्र है।[3] इस लक्षण से कुछ उत्पन्न नहीं होता। किन्तु उस लक्षण से युक्त द्रव्य से निरन्तर अनेक पर्यायों की उत्पत्ति एवं संहृति होती रहती हैं तथा इसके बावजूद भी वह द्रव्य अव्यय बना रहता है।[4] जैनदर्शन के अनुसार विश्व की संरचना में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये छह द्रव्य निहित हैं।[5] ये छहों द्रव्य सत् अर्थात् यथार्थ हैं– वास्तविक हैं। इस लोक में उपर्युक्त छहों द्रव्य यद्यपि एक दूसरे में अनुप्रविष्ट हैं तथापि तात्विक दृष्टि से वे सर्वथा पृथक–पृथक हैं। न तो वे कभी किसी एक तत्व से उत्पन्न ही हुए हैं और न कभी किसी एक तत्व में विलीन ही होंगे। वे अनादि काल से आपस में मिले हुए होने पर भी, अब तक आपस में नहीं मिल पाये हैं और न कभी भविष्य में ही उनके अन्योन्य संप्लव की आशा की जा सकती है।[6] वे अनादि, अनन्त, अकृत्रिम एवं शाश्वत हैं । उनसे निर्मित यह लोक भी अनादि, अनन्त, अकर्तृक एवं शाश्वत है।[7]

लोक की स्वतः परिणमनशीलता

जैन दार्शनिकों के अनुसार न तो कोई ब्रह्मा इस सृष्टि का सृजन करता है और न कोई विष्णु या शंकर उसका परिपालन अथवा संहार ही करता है। इसके विपरीत इस विश्व को उन्होंने आदि–अन्त रहित, सृष्टि–प्रलय रहित

तथा शाश्वत माना है।[8] इसके संचालन के लिए वे किसी दिव्य शक्ति अथवा ईश्वर की सत्ता भी स्वीकार नहीं करते हैं। जैन परंपरा के अनुसार यह विश्व पूर्वोक्त छह द्रव्यों के स्वभाव से ही संचालित है। परम विस्तृत आकाश द्रव्य सब द्रव्यों को स्थान देता है जबकि धर्म और अधर्म द्रव्य गतिमान् हुए जीव एवं पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक होते है। काल द्रव्य स्वयं प्रतिक्षण बदलता हुआ अन्य द्रव्यों को नये–नये रूप धारण करने में सहयोग देता है। जबकि चेतनारहित पुद्गल द्रव्य चेतनायुक्त जीवों को स्वकर्मानुसार देहादि धारण करने में सहयोगी होता है और चेतन जीव भी परस्पर एक दूसरे को नाना प्रकार से सहायता करते हैं।[9] इस प्रकार षड्द्रव्यों से निर्मित अकृत्रिम–अनीश्वर विश्व की संरचना जैनदर्शन में मान्य है। इसी लोक के विभाग स्वरूप मध्यलोक के ऊपर सुमेरूपर्वत की परिक्रमा करने वाले ज्योतिर्विमानों में से सूर्य एवं चन्द्रमाँ का विशेष स्वरूप यहां प्रतिपादित किया जा रहा है।

चन्द्र विमान की स्वाभाविक प्रकृति कृष्ण एवं शुक्लपक्ष

सृष्टि प्रक्रिया के संदर्भ में हम सभी के मानस में एक प्रश्न निरन्तर प्रदीप्तमान रहता है कि चन्द्रमा का प्रकाश पन्द्रह दिनों तक क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता रहता है और अनन्तर पन्द्रह दिनों में वही प्रकाश मंद होता हुआ कालिमा में कैसे बदल जाता है? इस प्रश्न का समाधान देते हुए आचार्य नेमीचन्द्र त्रिलोकसार में लिखते हैं कि–

चंदो णियसोलसमं सुक्को य पण्णरदिणोत्ति।
हेट्ठिल्ल णिच्च राहूगमणविसेसेण वा होदि।।[10]

अर्थात् चन्द्र मण्डल पन्द्रह दिनों में अपनी सोलह कलाओं द्वारा स्वयं कृष्ण और शुक्ल रूप होता है। अन्य आचार्यों के अभिप्राय में राहु, चन्द्र विमान के नीचे विशेष प्रकार से गमन करता है जिस कारण से चन्द्रमाँ प्रत्येक पन्द्रह दिनों में कृष्ण और शुक्ल होता है। तात्पर्य यह है कि चन्द्र विमान के कुल सोलह भाग हैं। एक–एक दिन में एक–एक भाग जब कृष्ण रूप परिणमन करता जाता है तब चन्द्रमाँ 15 दिन में स्वयं कृष्ण रूप हो जाता है। तथा जब प्रत्येक दिन एक एक भाग श्वेतरूप परिणमन करता है तब चन्द्रमाँ 15 दिन में क्रम से कृष्ण से शुक्ल रूप हो जाता है।

चन्द्रमा का विस्तार 56/61 योजन है तथा चन्द्रमा के 16 भाग हैं, अतः 56/61 x 1/16 = एक कला अथवा चन्द्रमा के एक भाग का विस्तार 7/122 योजन प्राप्त होता है। यहां विस्तार प्रमाण योजन में जानना चाहिए। एक प्रमाण योजन 4000 मील का होता है, अतः 7/122x4000= 229.50 मील अथवा 344.26 किलोमीटर चन्द्रमा की एक कला का प्रमाण है। कुल 16 कलाएं अतः

229.50x16= 3672.13 मील अथवा 5508.19 किलोमीटर अथवा वही 56/61 योजन चन्द्रमा का कुल प्रमाण/विस्तार प्राप्त है।

जैन परम्परा में मान्य चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण का स्वरूप

सम्पूर्ण विश्व में ज्योतिषविद्या का प्रभाव शनैः शनैः वृद्धिंगत प्रतीत हो रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति वर्ष में अनेक बार होने वाले चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण से परिचित है। हम सभी यह जानना भी चाहते हैं कि ये ग्रहण क्यों और कैसे होते हैं? अथवा वर्ष में कितनी बार होते हैं? जैनागम, जैन ज्योतिष्क एवं तात्त्विक शास्त्रों में इस संदर्भ में जो विवेचन प्राप्त होता है वह इस प्रकार है–

राहुअरिट्ठविमाणा किंचूणं जोयणं अधोगंता।
छम्मासे पव्वंते चंदरवी छादयंति कमे।।[11]

अर्थात् राहु और अरिष्ट (जिसे केतु कहा जाता है) के विमानों का व्यास कुछ कम एक योजन प्रमाण है। राहु और केतु के विमान क्रमशः चन्द्र और सूर्य के विमानों के नीचे गमन करते हैं। ये दोनों छह माह बाद पर्व के अन्त में अर्थात् पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र और सूर्य को आच्छादित करते हैं। इसी का नाम ग्रहण है।

विशेष यहां केतु को अरिष्ट ग्रह कहा गया है तथा वैदिक परम्परा में भी राहु और केतु को अरिष्ट अथवा अनिष्ट ही माना गया है। ज्योतिष शास्त्र में तो इन्हें दोष के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण यही है कि इनकी प्रवृत्ति प्रकाश जो कि सत् का प्रतीक है उसे आच्छादित करने की है। अतः ये असत् अन्धकार के प्रतीक होने से दोष कहे गये हैं।

जैन परम्परा में मान्य चन्द्र एवं सूर्य की संख्या

प्रायः देखा जाता है कि हमें एक चन्द्रमा एवं एक ही सूर्य दिखाई देता है, परन्तु ज्योतिषवेत्ता अलग अलग ग्रहों के अनुसार इनकी संख्या दो या इससे ज्यादा बताते हैं। आधुनिक विज्ञान अब तक की प्राप्त खोजों के अनुसार हजारों गेलेक्सी के अपने अपने सूर्य, चन्द्र के हिसाब से इनकी संख्या हजारों में बताता है। जैन परम्परा में चन्द्र एवं सूर्य की संख्या के संदर्भ में प्राचीन काल से ही स्पष्ट विवेचन प्राप्त होता है। जैन परम्परा में जिस पृथ्वी पर हम रह रहे हैं अथवा जो भूभाग हमें दिखाई देता है वह जम्बूद्वीप के विभाग भरतादि सात क्षेत्रों में से प्रथम भरत क्षेत्र का ही एक भाग है। प्रत्येक द्वीप को एक समुद्र ने घेरा हुआ है। यथा जम्बूद्वीप को लवण समुद्र ने, घातकीखण्ड द्वीप को कालोदधि समुद्र ने, इसी प्रकार आगे–आगे के द्वीप को उसी नाम के समुद्र ने घेरा हुआ है। प्रत्येक द्वीप के अपने–अपने चन्द्र एवं सूर्य हैं।

मनुष्य क्षेत्र में चंद्र व सूर्य की संख्या इन चन्द्र एवं सूर्य की संख्या इस प्रकार है–

दो दोवग्गं बारस बादाल बहत्तरिदुइणसंखा।
पुक्खरदलोत्ति परदो अवट्ठिया सव्वजोइगणा।।[12]

अर्थात् जम्बूद्वीप में चन्द्र एवं सूर्य दो–दो, लवण समुद्र में चार–चार, घातकीखण्ड द्वीप में बारह–बारह, कालोदधि समुद्र में व्यालीस–व्यालीस तथा अर्ध पुष्करवरद्वीप में बहत्तर चन्द्रमा एवं बहत्तर सूर्य हैं। इस प्रकार ढ़ाई द्वीप में कुल 132 चन्द्रमा एवं 132 सूर्य हैं।

ढाईद्वीप के चन्द्र एवं सूर्य का परस्पर में अन्तर[13]

नाम– द्वीप एवं समुद्र	सम्पूर्ण वलय व्यास	संख्या	चन्द्र का चन्द्र से अन्तर	परिधि से निकटवर्ती चन्द्र की दूरी	सूर्य का सूर्य से अन्तर	परिधि से निकटवर्ती सूर्य की दूरी
जम्बूद्वीप	1 लाख योजन	2.2				
लवण समुद्र	2 लाख योजन	4.4	99999 5/61 योजन'	49999 33/61 योजन'	99999 13/61 योजन'	49999 37/61 योजन'
घातकीखण्ड द्वीप	4 लाख योजन	12.12	66665 137/183 योजन'	33332 160/183 योजन'	66665 161/183 योजन'	33332 172/183 योजन'
कालोदधि समुद्र	8 लाख योजन	42.42	38094 410/1281 योजन'	19047 205/1281 योजन'	38094 578/1281 योजन'	19047 289/1281 योजन'
पुष्करार्द्ध द्वीप	8 लाख योजन	72.72	22221 167/549 योजन'	11110 358/549 योजन'	22221 239/549 योजन'	11110 394/549 योजन'

यहां योजन से तात्पर्य प्रमाण योजन स्वीकार करना चाहिए। एक प्रमाण योजन 4000 मील का होता है।

चन्द्रमाँ एवं सूर्य के गमन का स्वरूप

सूर्य एवं चन्द्रमा के गमन करने की क्षेत्रावली को अथवा गली को चारक्षेत्र कहते हैं। ये सभी अपने–अपने क्षेत्र में गमन करते हैं। जम्बूद्वीप के दो सूर्य एवं दो चन्द्रमा का एक–एक ही चारक्षेत्र है। लवणसमुद्र के चार सूर्य एवं चार चन्द्रमा के दो चारक्षेत्र हैं। घातकीखण्ड द्वीप के 12 सूर्य एवं 12 चन्द्र के 6 चारक्षेत्र, कालोदधि समुद्र के 42 सूर्य एवं 42 चन्द्र के 21 चारक्षेत्र और पुष्करार्धद्वीप के 72 सूर्य एवं 72 चन्द्र के 36 चारक्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप के चन्द्र और सूर्य जम्बूद्वीप में 180 योजन पर्यन्त ही विचरण करते हैं। शेष $330^{48/61}$ योजन लवण समुद्र में विचरण करते हैं। शेष पुष्करार्ध पर्यन्त के चन्द्र–सूर्य अपने–अपने क्षेत्र में विचरण करते हैं।[14] चन्द्रमा और सूर्य की वीथी अर्थात् गली का प्रमाण इस प्रकार है–

पडिदिवसमेक्कवीथिं चंदाइच्चा चरंति हु कमेण।
चंदस्स य पण्णरसा इणस्स चउसीदिसय वीथी।।[15]

अर्थात् जम्बूद्वीप के कुल $510^{48/61}$ योजन अथवा ($2043147^{13/61}$ मील) प्रमाण वाले चारक्षेत्र में चन्द्रमा की पन्द्रह एवं सूर्य की 184 वीथियाँ हैं। चन्द्र और सूर्य क्रम से प्रतिदिन एक–एक वीथी में ही संचार करते हैं। सूर्य की प्रत्येक गली का प्रमाण 48/61 योजन ($3147^{33/61}$ मील) है। यही पथव्यास कहलाता है। चूंकि कुल 184 गली हैं, अतः सम्पूर्ण पथव्यास 184/1 x 48/61 = 8832/61 योजन होगा। जम्बूद्वीप एवं सूर्यबिम्ब के प्रमाण का समानछेद करने पर [$510^{48/61}$] 31158/61 योजन प्राप्त होता है। यही चारक्षेत्र का प्रमाण है। इसमें से पथव्यास के प्रमाण को घटा देने पर [31158/61 - 8832/61, प्राप्त लब्ध में से 183 वीथी का भाग देने पर 2 योजन अर्थात् 8000 मील दूरी प्राप्त होती है। यही एक वीथी से दूसरी वीथी का अन्तर है। इस 2 योजन अन्तर में सूर्य बिम्ब का प्रमाण मिला देने पर [2 x 48/61=170/61 अर्थात् $2^{48/61}$ योजन ($11147^{33/61}$ मील) अथवा (16721.31 KM) सूर्य के प्रतिदिन के गमन का क्षेत्र प्राप्त होता है।

चन्द्रमा की प्रतिदिन की गति इस प्रकार है– जम्बूद्वीप के चारक्षेत्र का कुल प्रमाण $510^{48/61}$ अथवा [31158/61 मील, है। चन्द्रमाँ की कुल 15 वीथियाँ है। अतः 56/61 x 15/1= 840/61 योजन यह एक वीथी का प्रमाण हुआ। अथवा कुल चारक्षेत्र में से एक वीथी का प्रमाण घटाने पर (30318/61) योजन प्राप्त होता है। इसमें शेष 14 वीथियों का भाग देने पर $35^{214/427}$ योजन प्राप्त होता है। यही चन्द्रमाँ की एक गली से दूसरी गली का अन्तर है। इस अन्तर में चन्द्रबिम्ब का प्रमाण मिलाने से $35^{214/427}$ + 56/61=$36^{179/427}$ योजन अथवा 15159/427 + 56/61=15551/427 योजन अथवा $36^{179/427}$ योजन (145676.81 मील) अथवा (218515.22 KM) चन्द्रमा के प्रतिदिन के गमन का क्षेत्र प्राप्त होता है।

एक दिन में सूर्य 11147 $^{33/61}$ मील गमन करता है तथा वर्ष में 365 दिन होते हैं अतः सूर्य वर्ष में 11147 $^{33/61}$ मील X 365= 4068852.459 मील गमन करता है। किलोमीटर में यह प्रमाण 6103278.688 प्राप्त होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा एक दिन में 15551/427 योजन अथवा 145676.81 मील गमन करता है तथा वर्ष में 365 दिन होते हैं अतः चन्द्रमा एक दिन में 145676.81 मील X 365= 53172037.470 मील गमन करता है। किलोमीटर में यह प्रमाण 79758056.206 प्राप्त होता है। प्रत्येक चौथे वर्ष में 366 दिन होते हैं अतः लीप वर्ष में यह प्रमाण इस प्रकार होगा– चन्द्रमाँ एक दिन में 145676.81 मील X 366= 53317712.46 मील गमन करता है। किलोमीटर में यह प्रमाण 79976568.69 प्राप्त होता है।

चूंकि सूर्य और चन्द्र आदि सुमेरू पर्वत के मध्य में चारों ओर ही भ्रमण करते हैं अतः मेरू पर्वत के मध्य से लगाकर अभ्यंतर वीथी पर्यन्त उत्तर दिशा में सूर्य का आताप मूलतः नीचे की ओर 1800 योजन तथा सूर्य बिम्ब से 100 योजन ऊपर ज्योतिर्लोक होने से ऊपर 100 योजन पर्यन्त फैलता है। सूर्य का प्रकाश नीचे की ओर पृथ्वी के अंतिम भाग में (जम्बूद्वीप का व्यास 1 लाख योजन के आधे में से चारक्षेत्र का प्रमाण 180 योजन घटाने पर 49820 योजन प्राप्त होता है)। 49820 योजन अर्थात् 199280000 मील अथवा 298920000 किलोमीटर दूर तक फैलता है। इस प्रमाण से सूर्य की उत्तर दिशा सम्बन्धि पृथ्वी की दूरी का प्रमाण भी ज्ञात हो जाता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में सूर्य का प्रकाश 33513 $^{1/3}$ योजन अर्थात् 134053333.33 मील अथवा 201080000 किलोमीटर दूर तक फैलता है।

सूर्य का प्रकाश नीचे की ओर 1800 योजन फैलता है। तात्पर्य यह है कि सूर्य बिम्ब से चित्रा पृथ्वी 800 योजन नीचे है तथा 1000 योजन की उसकी जड़ है। सूर्य का प्रकाश चित्रा पृथ्वी की जड़ तक कुल 1800 योजन 7200000 मील अथवा 10800000 किलोमीटर पर्यन्त फैलता है, परन्तु नरक में इनका गमन नहीं होता है।

दिन और रात के समय का परिमाण

जम्बूद्वीप की वेदी के पास 180 योजन की आभ्यंतर प्रथम वीथी में जब सूर्य गमन करता है, तब दिन 18 मुहूर्त अर्थात् 14 घंटा 24 मिनिट का होता है। तथा रात्रि 12 मुहूर्त अर्थात् 9 घंटा 36 मिनिट की होती है। किन्तु जब वही सूर्य लवण समुद्र की बाह्य अर्थात् अन्तिम परिधि में गमन करता है, तब दिन 12 मुहूर्त का और रात्रि 18 मुहूर्त की होती है।[16] कर्क राशि में स्थित सूर्य आभ्यंतर परिधि में गमन करता है और मकर राशि में स्थित सूर्य बाह्य परिधि में गमन करता है।

इसे सूर्य की उत्तरायण एवं दक्षिणायन दशा भी कहते हैं। जिस राशि में इनका गमन होता है उस राशि की समाप्ति पर्यन्त दिन एवं रात्रि का प्रमाण पूर्ववत् नहीं रहता अपितु घटता–बढ़ता रहता है।

यथा–

कक्कडमयरे सव्वब्भंतरबाहिरपहट्ठिओ होदि।
मुहभूमीण विसेसे वीथीणंतरहिदे य चयं।।[17]

अर्थात् कर्क राशि में स्थित सूर्य अभ्यंतर परिधि में भ्रमण करता है और मकर राशि में स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है। भूमि में से मुख घटाकर जो शेष बचे उसमें वीथियों के अन्तर [184-1=183] का भाग देने पर हानि चय प्राप्त होता है। यहां भूमि 18 मुहूर्त एवं मुख 12 मुहूर्त है। इन्हें परस्पर में घटाने पर 6 प्राप्त होता है। सूर्य की कुल 184 वीथियां हैं परन्तु अन्तराल केवल 183 में ही होता है। 183 वीथियों का अन्तराल 6 मुहूर्त है अतः एक वीथी अथवा गली का अन्तराल 6/183 अर्थात् 2/61 हुआ। इस प्रकार जिस दिन सूर्य अभ्यंतर वीथी में भ्रमण करता है उस दिन 18 मुहूर्त का दिन होता है, किन्तु जिस दिन सूर्य अन्य वीथी में भ्रमण करता है उस दिन कालमान 2/61 मुहूर्त घट जाता है। अर्थात 18/1 – 2/61 = $17^{59/61}$ मुहूर्त का दिन हुआ। इसी प्रकार तीसरी वीथी में पुनः 2/61 मुहूर्त घट जाता है और अन्त में 184 वीं वीथी में दिन 12 मुहूर्त का होता है। इसी प्रकार आभ्यंतर वीथी की ओर बढ़ते हुए सूर्य का कालमान पुनः 18 मुहूर्त के दिन के रूप में हो जाता है।

दक्षिणायन और उत्तरायन की विवेचना

उपरोक्त विवेचन मनुष्य लोक के अनुसार ही है। इसी ताप एवं तम अथवा दिन एवं रात्रि के कालमान के आधार पर आचार्यों ने श्रावण एवं माघ माह में सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायन की प्ररूपणा की है। इसी गणना के अनुसार ही प्रत्येक माह में दिनों की संख्या भी निश्चित होती है। सूर्य के उत्तरायन एवं दक्षिणायन के अनुसार, वर्ष को छह–छह के भेद से दो भागों में विभाजित किया गया है। छह माह में 183 दिन होते हैं तथा सूर्य की वीथियां भी 183 हैं, अतः प्रत्येक माह के दिनों की संख्या निम्न होगी–

क्रम	माह	विधि	कुल दिन	आधुनिक माह	कुल दिन
1.	श्रावण माह में	183/6 = 61/2 = 30½	30 ½	जुलाई	31

2.	भाद्र माह तक	61/2+61/2 = 61	30 ½	अगस्त	31
3.	आसोज माह तक	61/1 + 61/2 = 183/2=91½	30 ½	सितम्बर	30
4.	कार्तिक माह तक	183/2 + 61/2 = 122	30 ½	अक्टूबर	31
5.	मार्गशीर्ष माह तक	122/1 + 61/2 = 305/2 = 152 ½	30 ½	नवम्बर	30
6.	पौष माह तक	305/2+ 61/2 = 183	30 ½	दिसम्बर	31
7.	माघ माह में	183/6 = 61/2 = 30 ½	30 ½	जनवरी	31
8.	फाल्गुन माह तक	61/2+61/2 = 61	30 ½	फरवरी	28या 29
9.	चैत्र माह तक	61/1 + 61/2 = 183/2 =91½	30 ½	मार्च	31
10.	वैशाख माह तक	183/2 + 61/2 = 122	30 ½	अप्रेल	30
11.	ज्येष्ठ माह तक	122/1 + 61/2 = 305/2 = 152 ½	30 ½	मई	31
12.	आसाढ़ माह तक	305/2+ 61/2 = 183	30 ½	जून	30
माह का भाग देने पर काल की गणना अथवा दिनों का प्रमाण प्राप्त होता है।			366		365 या 366

भारतीय मासिक गणना के अनुसार प्रत्येक वर्ष में 366 दिन होते हैं परन्तु आधूनिक मासिक गणना के अनुसार सामान्यतः वर्ष में 365 दिन होते हैं तथा प्रत्येक चतुर्थ वर्ष में 366 दिन होते हैं। श्रावण माह से पौष माह तक सूर्य दक्षिणायन रहता है तथा माघ माह से आषाढ़ माह तक सूर्य उत्तरायण रहता है। भारतीय मासिक गणना के अनुसार एक वर्ष मे 365 दिन और 6 घंटे होना चाहिए। यही आधुनिक वैज्ञानिकों, खगोलविदों एवं ज्योतिष्कों का मानना है।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र एवं सूर्य की संख्या

ढ़ाईद्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चन्द्र एवं सूर्य की संख्या इस प्रकार है–

मणुसुत्तरोलादो वेदियमूलादु दीवउवहीणं।
पण्णाससहस्सेहि य लक्खे तदो वलयं।।

दीवद्धपढमवलये चउदालसयं तु वलयवलयेसु।
चउचउवड्ढी आदी आदीदो दुगुणदुगुणकमा।।[18]

मानुषोत्तर पर्वत से और द्वीप समुद्रों की वेदिका के मूल से पचास हजार योजन आगे जाकर प्रथम वलय है। इसी प्रकार दोनों स्थानों के प्रथम वलयों से एक एक लाख योजन आगे जाकर द्वितीयादि वलय हैं। मानुषोत्तर पर्वत से बाहर पुष्करार्ध द्वीप के प्रथम वलय में चन्द्र और सूर्य की संख्या 144–144 है। दूसरे, तीसरे आदि वलयों में चार–चार की वृद्धि होते हुए क्रम से 148, 152, 156, 160 आदि चन्द्र और सूर्य पाये जाते हैं। पूर्व पूर्व द्वीप समुद्रों के आदि में चन्द्र–सूर्य की जो संख्या है, उत्तरोत्तर द्वीप समुद्रों आदि में उससे दूनी दूनी है। जैसे पुष्करार्ध द्वीप के आदि अर्थात् प्रथम वलय में चन्द्र–सूर्य की संख्या 144–144 है और पुष्कर समुद्र आदि में दोनों की संख्या 288–288 है। इसके बाद प्रत्येक वलय में 4–4 की वृद्धि पूर्वक चन्द्र एवं सूर्य की संख्या का निर्धारण करना चाहिए।

निष्कर्ष

जैन मूल ग्रंथो में अनेक विषयों के साथ ही ज्योतिष विद्या संबंधि सामग्री उपलब्ध है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि के संदर्भ में इनमें मौलिक विचार व विवेचन भी प्राप्त होती है। आधुनिक खगोल शास्त्र से भले ही ये विचार भिन्न लग रहे हो परन्तु गहरी शोध व विश्लेषण इन दो भिन्न बहती धाराओं का संगम स्थल ढूंढ सकती है। इस लेख में चर्चा के बाद यह स्पष्ट है कि जैन ग्रंथो में प्राप्त खगोल संबंधि तथ्य अनेक खगोलीय प्रसंगो व घटनाओं की व्याख्या करने में सक्षम है और अन्य अनेक खगोल–गुंथीओं को समझाने का सामर्थ्य रखती है।

संदर्भ

1. लोको ह्यकृत्रिमो ज्ञेयो जीवाद्यर्थावगाहकः।
   नित्यः स्वभाव–निर्वृत्तिः सोनन्ताकाशमध्यगः।। महापुराण 4/15।
   यथास्वं गुणपर्यायैरतो नान्योन्यसंप्लवः। वही 3/4।
   सर्वाकाशमनन्तं तस्य च बहुमध्यसंस्थितः लोकः।
   स केनापि नैव कृतः न च धृतः हरि–हरादिभिः।। कार्तिकेया.115।
2. उत्तराध्ययन सूत्र, 36/2
3. सद् द्रव्यलक्षणम्। तत्वार्थसूत्र, 5/32।
4. उत्पादव्यय–ध्रौव्य–युक्तं सत्। तत्वार्थसूत्र, 5/33.
   गुणपर्ययवद् द्रव्यम्। तत्वार्थसूत्र, 5/38।
5. तिलोयपण्णत्ति, 1/134, 135।
6. अण्णोण्णपवेसेण य दव्वाणं अध्दाणं हवे लोओ। कार्तिकेया. 116
   यथास्वं गुणपयायैरतो नान्योन्यसंप्लवः।। महापुराण. 3/4

7. लोगो अकिट्टियो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वित्ती। त्रिलोकसार 4
   जीवा जीवेर्हि फुडी सव्वागासवयवी णिचयो। लोकतत्वनिर्णय 3/34–36।
8. सर्वाकाशमनन्तं तस्य च बहुमध्य–संस्थितः लोकः।
   स केनापि नैव कृतः न च धृतः हरिहरादिभिः।। कार्तिकेया. 115.
   असृज्योयमसंहार्यः स्वभावः नियतस्थितिः। महापुराण 4/40
9. सर्वार्थ. 5/1–22।
10. त्रिलोकसार, गाथा 342।
11. वही 339।
12. वही, गाथा 346।
13. वही, गाथा 373।
14. वही, गाथा 375।
15. वही, गाथा 376।
16. वही, गाथा 379।
17. वही, गाथा 380।
18. वही, गाथा 349–350।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराध्ययन सूत्र, वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, 2002
2. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, आचार्य कार्तिकेय, परमश्रुत प्रभावक मंडल, अगास, 1996
3. तत्वार्थसूत्र, आचार्य उमास्वामी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2006
4. तिलोयपण्णत्ति, आचार्य यतिवृषभ, संस्कृति संरक्षण संस्थान, नई दिल्ली, 2008
5. त्रिलोकसार, आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, संपादक जैन रतनचन्द्र, श्री दिगम्बर अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी, वि. सं. 2050
6. महापुराण, महाकवि पुष्पदन्त, संपादक एवं अनुवादक, डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,1994
7. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, संपादक एवं अनुवादक, श्री फूलचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2005।

****